'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १३९ | वाराणसी, गुरुवार, ३ दिसम्बर, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

कार्यकर्ताओं के बीच

पट्टी (पंजाब) १५-११-'५९

स्वच्छ शुद्ध और निर्मल क्रिया से ही तहरीक को बल मिलेगा

जबकि मुझे दुनिया के सामने आने का मौका मिला था, उस वक्त आठ साल पहले मुझमें इस काम के लिए जो उत्साह था, उससे आज बहुत ज्यादा है। मैं न शारीरिक थकान महसूस करता हूँ, न मानसिक थकान। मेरे मन में यह आया कि हमारे कार्यकर्ताओं की जमात तब तक नहीं बढ़ेगी और तब तक बढ़ना अच्छा भी नहीं है, जब तक आज जो कार्यकर्ता हैं, उनको आत्म-शुद्धि की राह नहीं मिल जाती। मेरे मन में नये-नये विचार आते रहते हैं। मेरा ऐसा स्वभाव नहीं है कि कोई विचार मन में आये और मैं उसपर अमल न करूँ। विचार की उत्पत्ति और उसके अमल में कुछ समय जाता है, विचार परिपक्व होने के लिए उतना जरूरी भी होता है, लेकिन जो भी विचार मन में आता है, उसपर मैं अमल करता हूँ।

साहित्य-प्रचार का काम

अब हमारी यात्रा का नया तरीका शुरू हुआ है तो मन में कई बातों की उथल-पुथल चलती है। कभी-कभी लगता है कि साहित्य-प्रचार के नाम से हमने जो काम चलाया है, वह चलता तो रहे, लेकिन मेरी यात्रा के साथ क्यों चले? मैं अक्सर पूछता हूँ कि जो काम होता है, वह हमारे अखबारों में क्यों नहीं प्रकाशित होता है? हमारी हर बात जो हो चुकी, लोगों के सामने आनी चाहिए। अभी तक हमारा जो साहित्य-प्रचार का काम चल रहा है, वह नगण्य सा है। इसे आन्दोलन नहीं कहते। होना तो यह चाहिए कि हमारे लोग गाँव-गाँव और घर-घर जा रहे हैं और रोज हमारे विचार की चर्चा चल रही है। तहरीक उसका नाम है, जिसकी चर्चा सारे देशभर में रोज होती हो।

कार्यकर्ताओं के लिए कार्यक्रम

तहरीक के काम को गति देने के लिए बहुत जरूरी है कि हमारे जो कार्यकर्ता हैं, उनके जीवन का और सोचने का स्तर गहरा हो और उनको अपने काम का सीधा सम्बन्ध परमेश्वर के साथ जोड़ने की प्रेरणा हो। इन दिनों हम इतना सुपर-फिशियल (ऊपर-ऊपर से) चिन्तन करते हैं कि अन्दर की गहराई में जो शक्तियाँ हैं, उन्हें पहचानते नहीं। मौन में जो शक्ति है, वह बोलने में नहीं है। मैं चाहता हूँ कि कार्यकर्ता इस बात का अभ्यास करें कि अपनी हर कृति परमेश्वर के साथ जुड़ जाय। अपनी कृति परमेश्वर के साथ जोड़ने के कम-से-कम मानी यह हैं कि किसीके साथ हमारी अनबन न हो और हरएक के लिए हमारे मन में प्यार ही पैदा हो। यह तो इसके कम से कम मानी हैं, ज्यादा मानी और हो सकते हैं।

भक्तिमार्ग में नामस्मरण की महिमा कही गयी है, मैं इसके मानी यह नहीं समझता कि जपमाला लेकर नाम रटन करना, चित्त में निरंतर परमेश्वर का स्मरण करना और जो भी मिले, उसे परमेश्वर का प्रतिनिधि समझना ही इसके असली मानी हैं। यह तो अन्दर से करने का ध्यानयोग है। बाहर से माला लेकर जप करना—यह बिलकुल स्थूल प्रक्रिया है। जहाँ परमात्मा का नाम लिया, वहाँ एकदम उसका रूप सामने खड़ा हुआ, ऐसा होना चाहिए। माँ कहते ही एकदम माँ का पूरा चित्र सामने खड़ा होता है। हम दुःख में माँ-माँ कहकर चिल्लाते हैं तो उस वक्त उसका चित्र सामने खड़ा होता है, वैसे ही परमात्मा का नाम लेते ही उसका पूरा चित्र सामने खड़ा हो। यह निरंतर जागृति का विचार है। मैं चाहता हूँ कि हमारे कार्यकर्ता इसे पकड़ लें।

अध्ययन यांत्रिक न हो

आज एक भाई मिले थे। उन्होंने कहा कि वे कालेज के दिनों में गीता-प्रवचन पढ़ते थे। जिसका उनपर बहुत असर हुआ। यही कहानी मैंने हिंदुस्तान में कई जगह सुनी। भूदानयात्रा के आरंभ के दिनों की बात है। विंध्यप्रदेश में एक शिविर हुआ। उसमें आये हुए कार्यकर्ताओं से मैंने पूछा कि आप इस शिविर में किस आकर्षण से आये हैं? आये लोगों ने जवाब दिया कि हमने आपका गीता-प्रवचन पढ़ा था। उसके आकर्षण से हम यहाँ आये हैं। हमारे साहित्य-प्रचार करनेवाले भाइयों से मैं कहना चाहता हूँ कि आप किताबें बेचते हैं तो साथ-साथ उनका मुताला (अध्ययन) करें, उसपर चिंतन, मनन करें। दूसरी भी ऐसी आध्यात्मिक किताबें हैं, जिनका जीवन में निरंतर उपयोग होगा। जो लोग किताबों का प्रचार करते हैं, उनके जीवन में यह चीज न हो और वे कुशलतापूर्वक किताबों का प्रचार करते हों तो उससे हमारा काम नहीं बनेगा। हम यह नहीं चाहते कि किसी तरह से लोगों के पास हमारी किताब पहुँचे, बल्कि यह चाहते हैं कि योग्य व्यक्ति के जरिये पहुँचे और उसपर चिंतन, मनन हो। किताबों का अध्ययन यांत्रिक न हो, बल्कि जीवन के साथ संबंध रखकर हो।

इंदौर में हमारे दो-तीन भाई साहित्य-प्रचार का काम करते हैं। उन्होंने कहा कि हम बार-बार अध्ययन करते हैं, फिर भी उसकी जरूरत मालूम होती है। कलकत्ते में हमारा एक कार्यकर्ता है—दाताराम। वह अजीब मनुष्य है। पहले उसका व्यापार चलता था, लेकिन अब उसने व्यापार समेट लिया है और हर रोज आठ-दस घंटे वह प्रचार का काम करता है। वह जिस-किसीको वह पुस्तक देता है, उसपर असर होता है। उसका घर याने एक आश्रम ही है। वह बहुत अच्छा गहरा प्रचार कर रहा है। इस प्रकार के मनुष्य जगह-जगह हैं। जो कि इस विचार के मिशनरी बनें, इसमें इतने तन्मय हों, उनको रात-दिन दूसरी किसी चीज की धुन ही न हो। ऐसे कार्यकर्ता किताबें लेकर लोगों के पास जायँगे तो लोगों पर असर होगा। उन कार्यकर्ताओं को चाहिए कि जिन किताबों का वे प्रचार करते हैं, उनका श्रद्धापूर्वक, चिकित्सा-पूर्वक, बुद्धिपूर्वक और ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।

क्रियाएँ कम हों, कर्म ज्यादा

मेरा मानना है कि जितनी क्रियाएँ कम होंगी, उतना कर्म-योग बढ़ेगा। गीता-प्रवचन में उसकी मिसाल देते हुए मैंने कहा है कि किसी मीटिंग में होहल्ला चलता हो तो उसे शांत करने के लिए पुलिस को लाठी चलानी पड़ती है। स्वयंसेवकों को इधर से उधर दौड़ना पड़ता है और चिल्लाना पड़ता है। लेकिन तीसरा कोई ऐसा होता है, जिसके आने से ही सभा शांत होती है। अब उसने क्रिया क्या की? सिर्फ आने की क्रिया की, लेकिन कर्म कितना बड़ा हुआ! जिन्हें लाठी चलानी पड़ी, उन्होंने कितनी तीव्र क्रिया की, लेकिन उसका परिणाम मानसिक शांति में नहीं आया। इसलिए हमारी क्रियाएँ कम-से-कम हों और कर्म ज्यादा-से-ज्यादा हों। कोई भी किसान बोने जाता है तो कम-से-कम बोकर ज्यादा से ज्यादा निकालना चाहता है। वह इधर-उधर यों ही बीज फेकता नहीं है, हम समझें कि क्रिया बढ़ाना याने कर्म बढ़ाना नहीं है। इसलिए हमारी क्रियाएँ शांत हों। दिन-ब-दिन शांति की ज्यादा जरूरत महसूस हो रही है। जहाँ ऐटम बम आया, वहाँ लाठी का क्या उपयोग? ऐटम बम के सामने लाठी, बन्दूक, चिल्लाना—यह सब बेकार है। आप अगर चिल्लाना चाहेंगे तो आपको समझना चाहिए कि आपके विचारों के जो दुश्मन हैं, उनके पास चिल्लाने के कितने साधन हैं। वे जितना प्रचार कर सकते हैं, उसका सौवा हिस्सा भी आप नहीं कर सकते। वे हमारे बारे में चाहे जितनी गलतफहमी फैला सकते हैं। कश्मीर में एक छोटी-सी घटना बनी तो वह सारे देशभर फैली कि मुसलमानों ने विनोबा से कहा कि कुरान मत पढ़ो। एक छोटी-सी घटना का इतना प्रकाशन हुआ! कश्मीर में मुझे मुसलमानों का इतना प्रेम मिला कि उसका मैं बयान नहीं कर सकता, लेकिन उस सबका प्रकाशन नहीं हुआ। अब मैं कहूँ कि मेरी तरफ से प्रेस में प्रचार जाय तो मैं नाकामयाब रहूँगा। लंदन टाइम्स ने बापू के बारे में कुछ गलत खबर शाया कर दी तो वह सारे यूरोपभर में फैली। इधर बापू चिल्लाते ही रहे, लेकिन जो गलतफहमी होनी थी, वह हो चुकी। इस तरह दूसरों के हाथ में जो साधन हैं, उन्हींको हम आजमायेंगे तो हम हार जायँगे। हमारे पास भी अपने साधन हैं। अज्ञात यात्रा हमारा अपना एक साधन है।

असर का एक तरीका

मैं कोल्हापुर में गया था तो दस-पाँच लोगों ने निदर्शन किये। इसलिए मैंने सभा बन्द की और यह कहा कि दूसरे दिन निदर्शन होंगे तो सभा नहीं होगी। फिर कुछ लोगों ने मुझसे कहा कि बीस हजार लोगों में सिर्फ दस-पाँच ही चिल्लानेवाले थे। दस-पाँच चिल्लायें तो उन्हें आप कैसे समझायेंगे? मैंने जवाब दिया कि मेरे पास अपना शस्त्र है। मैं लाउडस्पीकर इस्तेमाल नहीं करूँगा तो फिर पचास से ज्यादा व्यक्तियों की सभा नहीं होगी। यह भी हो सकता है कि वैसी छोटी-छोटी सभाएँ करते हुए मैं कोल्हापुर जैसे शहर में बीस-पचीस दिन बिताऊँ। क्रिया कम और कर्म ज्यादा, यह मेरा तरीका है। जो क्रिया स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल होगी, उसका ज्यादा से ज्यादा असर होगा।

अभी जो मैं बोल रहा हूँ, उससे दो भाइयों के दिल में भी आग सुलग जाय तो जितना काम होगा, उतना एक लाख लोगों की मीटिंग से नहीं होगा। मीटिंग का नतीजा इतना ही निकलेगा कि दूसरे दिन पेपर में कुछ खबर आयेगी। लेकिन पेपर की हालत यह है कि कल का पेपर लोग आज नहीं पढ़ते। दस हजार साल पहले की उपनिषद् आज भी पढ़ते हैं। ढाई हजार साल पहले लिखे हुए पतंजलि के सूत्र आज भी चलते हैं, लेकिन अखबारों का जोर आज के दिन चलता है। कल खत्म हो जाता है। आज का अखबार कल तो कचड़े में चला जाता है। इसलिए जो गहरा असर करनेवाली चीज है, वह आजकल के प्रचार के ढंग से नहीं फैलती है, उसका प्रचार का ढंग दूसरा ही है। हमारे पंजाब में जो पचास-साठ कार्यकर्ता हैं, वे अपने विचार में तन्मय होना सीखें, पचास-साठ नानक बन जायँ तो कितना काम होगा! क्या नानक को सींग थे? भगवान ने जैसा हमें बनाया, वैसे ही उन्हें बनाया था। उन्हें जितनी चीजें दी थीं, उतनी सब हमें भी दी हैं। लेकिन फिर भी गाड़ी कहाँ रुकती है? हृदय में शुद्धि नहीं है; इसलिए गाड़ी रुकती है। जिस्मानी ताकत तो गुरु नानक से दूसरों में ज्यादा भी हो सकती है, लेकिन उनके पास जो चित्त-शुद्धि थी, वह दूसरों के पास नहीं है। हमारे कार्यकर्ता समझें कि अपने काम को सिवा चित्तशुद्धि के और किसी चीज की जरूरत नहीं है और वे अपने चित्त को शुद्ध करने की कोशिश करें।

●●●

प्रार्थना-प्रवचन

सोनगढ़ (सूरत) २२-९-'५९

भूमि-सा अधिष्ठान सामुदायिक होना ही चाहिए

मुझे अपने व्याख्यानों या भाषणों के विषय दर्शन (देखने-भर) से मिलते हैं, अन्धकार से मिलते हैं और प्रकाश से भी मिलते हैं। लेकिन मेरा आज का व्याख्यान लोगों को दिखा नहीं सकता, क्योंकि मुझे तो रखा गया है छाह में और मेरे श्रोतागण हैं धूप में। अगर मुझे भी धूप में रखा गया होता तो मेरा व्याख्यान आसानी से "साम्ययोग" पर बन पड़ता। साम्ययोग सृष्टि का अमर सन्देश है।

अक्राणीमहाल के कुछ संस्मरण

अभी-अभी मैं अक्राणीमहाल से लौटा आ रहा हूँ। वहाँ भी यहाँ जैसे लोग बैठे हैं, वैसे ही लोग दिखाई पड़े, वहाँकी जनता

www.vinoba.in

भी कृष्णवर्ण की थी। हमारे वहाँ जाने से लोगों को बड़ा ही सन्तोष हुआ। कारण इससे पहले उन्होंने यह कभी अनुभव ही नहीं किया कि कोई सेवा करने के निमित्त वहाँ पहुँचा हो। जैसे उन पहाड़ों में बाघ-सिंह घूमते हैं और ये लोग उनसे डरते हैं, वैसे ही इन्हें शहरवालों से भी डरना पड़ता है। बेचारों को शहर और शेर के बीच गुजर-बसर करनी पड़ती है। ये दोनों से डरा करते हैं। जब हमारे सेवक रत्नागिरि, नागपुर, विदर्भ आदि दूर-दूर प्रदेशों से बरसात के दिनों में वहाँके पहाड़ों में जाकर सर्वोदय का सन्देश सुनाते थे तो आरंभ में कोई भी सुनता न था। एकआध महीना इसी तरह बीत गया। तब इन्हें विश्वास हो गया कि सचमुच ये लोग सेवा के लिए ही आये हुए हैं। तब उनकी श्रद्धा बैठी। आज हिन्दुस्तान की ऐसी ही भयानक स्थिति है। आज है, इसका अर्थ यह नहीं कि कल ऐसी बात नहीं थी। सैकड़ों वर्षों से ऐसा ही चला आ रहा है।

इस अक्राणीमहाल में एक जगह मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। एक गाँव में एक पेड़ के नीचे कई मूर्तियाँ धरी हुई थीं, जिनमें एक भगवान बुद्ध की भी मूर्ति थी। मैंने पूछा—"यह मूर्ति कहाँसे आयी है ?" मुझे बताया गया कि पास की टेकड़ी पर खोदते समय मिली तो इसे यहाँ लाकर रखा गया है। यह सुनकर मुझे इस बात का आनन्द हुआ कि कम-से-कम बुद्ध भगवान के अनुयायी तो किसी जमाने में सेवा के निमित्त यहाँ आये होंगे। भले ही बीच के जमाने में कोई वहाँ न पहुँचा हो।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन मुझे वहाँ बड़ी मुश्किल पड़ी। इन्हें भगवान कृष्ण की बातें कैसे समझायें, जबकि ये लोग कृष्ण का नाम ही नहीं जानते। "कृष्ण नाम का कोई अवतारी पुरुष हो गया है और उसने हिन्दुस्तान में बहुत काम किया"—यह बात वे बिलकुल जानते ही नहीं थे। जब मुझे यह पता चला कि लगभग चालीस वर्ष पूर्व एक स्वीडिश मिशन ने काम शुरू किया था तो इस बात पर तरस आया कि हम लोगों की उपेक्षाबुद्धि किस हद तक पहुँची हुई है।

मैं कहना चाहता था, बारिश सबके साथ समान बरताव करती है, चन्द्र और प्रकाश भी समान बरताव करते हैं तो मुझे भी आप श्रोताओं की समान स्थिति में रखते तो मैं अपना व्याख्यान विशेष सरलता से समझा सकता।

खादी पर सफेदी नहीं, मिट्टी का रंग चढ़े

कई बार मुझे लगता है कि गांधीजी ने खादी का पोशाक खोज निकाला तो उसका इस जमाने में क्या परिणाम हुआ ? बड़े-बड़े श्रीमान अपना विलासी पोशाक छोड़ खादी पहनने लगे और सबके साथ मिल गये। याने यह साम्ययोग का पोशाक बन गया। लेकिन जब मैं गाँववालों को देखता हूँ तो कई बार मुझे स्वच्छता के प्रति अत्यन्त घृणा होने लगती है, यद्यपि वह पवित्रता की सगी बहन है। स्वच्छता का इतना महत्त्व है। फिर भी कभी-कभी मुझे उससे घृणा होने लगती है, जब मैं देखता हूँ कि खादीवालों का पोशाक सादा होने के बावजूद एकदम चमक उठता है, जब कि औरों का पोशाक गन्दा होने के बावजूद अनाक्रमणकारी और अहिंसक पाया जाता है। अभी मेरे सामने बैठे लोगों के पोशाक का मेरी आँखों पर इतना आक्रमण हो रहा है कि इसे अहिंसक पोशाक कैसे कहा जाय, यही समझ में नहीं आता। लेकिन जब उन गैरखादीधारी ग्रामीण लोगों की ओर देखता हूँ तो उनके पोशाक के रंग का आक्रमण नहीं होता। अनाक्रमणकारी, अहिंसक पोशाक समझकर ही खादी की खोज की गयी थी, लेकिन मुझे लगता है कि अब साबुन का उपयोग थोड़ा कम किया जाना चाहिए और कपड़े पर मिट्टी का स्वाभाविक रंग चढ़ना चाहिए। कपड़े गन्दे न रहें; पसीना आने पर उन्हें धो ही डालें, पर मिट्टी का रंग चढ़ा दें तो साम्ययोग की सिद्धि और भी अच्छी तरह होगी।

भगवान कृष्ण की हिन्दू धर्म को बेजोड़ देन

भगवान कृष्ण की महिमा गत पाँच हजार वर्षों से सारा हिन्दुस्तान गाता है। अभी तक ऐसा दूसरा नाम वह नहीं जानता। कारण ये कृष्ण भगवद्गीता के प्रवक्ता कृष्ण नहीं, बल्कि गायों की सेवा करनेवाले और गोबर आदि से भूमि की सेवा करनेवाले कृष्ण हैं। "कृष्ण" नाम ही सूचित करता है कि वे कैसे थे। इससे सर्वथा विपरीत नाम है "अर्जुन" इसका अर्थ "सफेद" होता है। संस्कृत में "कृष्ण" का अर्थ "काला" और "अर्जुन" का अर्थ "सफेद" होता है। "कृष्णार्जुन" रंगवाची शब्द हैं। वेद में भी इन्हीं अर्थों में ये प्रयुक्त हैं। दिन का कृष्ण भाग रात और अर्जुन (शुक्ल) भाग दिवस है। सारांश, कृष्ण और अर्जुन—ये दोनों शब्द संस्कृति के सूचक हैं और श्रीकृष्ण ने उस जमाने में दोनों धर्मों को जोड़ने का काम अच्छी तरह किया। कृष्ण ने हिन्दू धर्म को जो स्वरूप दिया, वह अद्वितीय है।

अगस्त्य : शुक्ल-कृष्ण के एकीकरण के आद्य आचार्य

इससे पहले यही काम अगस्त्य ऋषि ने किया था। सुबह के समय अगस्त्य तारा दिखाई पड़ता है। उसके डर से सारा जल साफ हो जाता है। आप जानते ही होंगे कि अगस्त्य समुद्र पी गये थे। इसलिए उनसे डरकर जब उनका उदय होता है तो नदी का जल साफ हो जाता है। इसी अगस्त्य का वर्णन करते हुए वेद में कहा गया है—"उभौ वर्णावृषिरुग्र पुपोष।" याने इस उग्र ऋषि ने जीवन में भी इन दोनों वर्णों को उतारा था। ऋषि होने के कारण इन्हें ज्ञान का दर्शन तो था ही, साथ ही वे कुदाल लेकर खुदाई भी करते थे। इसीलिए उनपर कृष्ण वर्ण चढ़ गया था। ध्यानयोगी ऋषि होने के कारण उनमें शुक्ल वर्ण भी था। इस तरह इनमें शुक्ल और कृष्ण—दोनों वर्ण एक हो गये थे। अगस्त्य के बारे में यह कथा प्रसिद्ध है। इनके बाद भगवान कृष्ण ही ऐसे हुए।

गांधीजी की दीक्षा : शरीरश्रम

श्रीकृष्ण के बाद बीच के जमाने में ऐसा कौन हुआ, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन गांधीजी ने यह दीक्षा अवश्य दी कि अगर हम शरीर-श्रम का व्रत लें तो यह भेद मिटा सकते हैं। शरीर-श्रम के साथ अगर आत्मज्ञान भी मिल जाय तो उद्धार हो जाय।

यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि भूदान, ग्रामदान आदि बातें सारे हिन्दुस्तान में पहुँच चुकी। इनका उद्देश्य क्या है, यह आज बतलाना नहीं चाहता हूँ। आज तो यही बतलाना है कि आज हमारे जो लोग उजली (उच्च) कौम के लोग कहलाते हैं, वे तभी शुद्ध हो सकते हैं, जब कि वे उस कृष्ण वर्ण की प्रजा की नैतिकता सीखेंगे। उच्चवर्गियों में यह भावना होनी चाहिए कि आज हमारा चारित्र्य गिर गया है और इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्हें शरीर-श्रम करना चाहिए।

ग्रामदान के बाद ही ग्राम-पंचायतें लाभप्रद

शरीरश्रम का सर्वोत्तम साधन जमीन है और कुछ जमीन

www.vinoba.in

का अधिकार हरएक के लिए खोल देना चाहिए। यह अत्यन्त स्पष्ट बात है कि जबतक भूमि सभी ग्रामवासियों की नहीं हो जाती, तबतक ग्राम-पंचायत आदि बातें विकेन्द्रित शोषण नहीं कर पाता। इसलिए क्षमतापूर्वक शोषण करने के निमित्त ही उनका सारा आयोजन माना जायगा। यह सच है कि ये योजनाएँ उद्देश्य से ही चलती हैं, लेकिन क्रमविपर्यास होने पर किसी भी बात का परिणाम उल्टा ही हुआ करता है। पंतजलि का एक सूत्र ही है—"क्रमान्यत्वात् परिणामान्यत्वेन।" याने जब क्रम बदल जाता है तो परिणाम भी बदल ही जाता है। रसोई के लिए बर्तन, चावल, आग, जल—चारों अपेक्षित होते हुए भी उनमें क्रम न रहे तो बात बन नहीं सकती। इसी तरह ग्रामदान के बाद ही ग्रामपंचायत आदि का होना लाभप्रद होगा।

ग्रामदान अर्थशास्त्र के सर्वथा अनुरूप

ग्रामदान पागल की बात नहीं। वह अत्यन्त शास्त्रीय, धार्मिक सामाजिक और आर्थिक अद्यतनीय प्रमेय है। यह पुराना अर्थशास्त्र नहीं। आज का, सबसे अन्तिम अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्र के विचारकों को, चाहे फिर वे किसी भी पक्ष के हों, यह कबूल करना ही होगा कि जमीन जैसी अधिष्ठानभूत वस्तु सामुदायिक होनी ही चाहिए। गीता ने भी "अधिष्ठान" शब्द से अर्थशास्त्र समझाया है—

"अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टाः दैवं चैवात्र पंचमम्।"

"अधिष्ठानम्" याने जमीन, जो काम करने के लिए चाहिए। "कर्ता" याने मैनेजमेण्ट (व्यवस्था) "करणम्" याने कैपिटल (पूँजी), "विविधाः पृथक्चेष्टाः" याने लेबर (काम) और "दैवम्" याने इंश्योरेन्स (बीमा)। इस तरह अर्थशास्त्र की यह थियरी (प्रक्रिया) और उनके विभाग भगवान ने पंचविध कारण के रूप में गीता में बतलाये हैं। इसलिए इनमें पहली वस्तु जमीन या अधिष्ठान सामुदायिक होना ही चाहिए।

ग्रामदान में कुछ खोना नहीं है

सबकी जमीन एक करने में किसी तरह के भय का कोई कारण नहीं है। इसमें कोई कुछ न खोयेगा। ऐसा भी मानने की जरूरत नहीं कि आज जितना जीवनस्तर ऊँचा है, वह बिलकुल निम्न कर दिया जायगा। इन सबका सामंजस्य किया जा सकता है। ग्रामदान द्वारा जब जमीन की मालकियत सबकी मान ली जायगी तो बीच के समय के उच्च जीवन-स्तरवालों को उसी तरह रहने दिया जाय तो उससे साम्ययोग में किसी भी तरह की बाधा नहीं आ सकती। इसलिए ग्रामदान से डरने की कोई बात नहीं। ग्रामदान से सभी निर्भय बनेंगे। सभी एक साथ काम करेंगे। इसमें परस्पर प्रेम रहेगा और सब मिलकर देश का उत्पादन बढ़ायेंगे। साथ ही धर्म और भक्ति भी बढ़ेगी। यदि ये सारी बातें समझ में आ जायँ तो मैं मानता हूँ कि गुजरात जैसे बुद्धिमान प्रदेश में यह बड़े ही अच्छे ढंग से हो सकता है।

क्या समझदार ग्रामदान पसन्द नहीं करते

कुछ लोग कहते हैं कि "गुजरात में ग्रामदान कैसे संभव है? यहाँ पिछड़ी हुई जातियाँ कम हैं और ग्रामदान हो सकता है तो पिछड़ी जातियों में ही हो सकता है या वीरान प्रदेश में हो सकता है। इसलिए आप अपना ढोल उजड़े वीरान जंगलों में जाकर पीटें तो वहाँ ग्रामदान मिल सकता है। लेकिन जहाँ समर्थ लोग रहते हैं, समझदार लोग रहते हैं और जमीन भी अच्छी है, वहाँ ग्रामदान कैसे मिल पायेगा?" मैं कहता हूँ कि ये लोग समझदार हैं तो अच्छा ही है। हमारा काम भी समझ-बूझकर ही होना चाहिए। ये लोग भलीभाँति समझ सकते हैं कि ग्रामदान का स्वरूप कितना भव्य है।

अगर ऐसी बात न होती तो आज के ही दिन एक साल पहले घटी घटना कभी घट ही न पाती। २२ सितम्बर सन् १९५७ की बात है। आज का दिन साम्ययोग का दिन है। याने आज के दिन रात और दिन समान होते हैं। एक और भी साम्ययोग का दिन है, जो मार्च की २२ वीं और २३ वीं तारीख को पड़ता है। इस शुभ दिन मानव को साम्ययोग का चिन्तन करने की प्रेरणा मिलती है। इसका अनुभव हमें येलवाल में इसी २२ सितम्बर १९५७ को प्राप्त हुआ। वहाँ पण्डित नेहरू, नम्बूदरी पाद और अन्य नेता लोग भी इकट्ठा हुए और सबने मिलकर ग्रामदान का अनुमोदन किया। जो लोग आपस में कभी मिल नहीं सकते, उन्होंने भी इस एक अत्यन्त महत्त्व के विषय पर विचार कर एकमत से एक विचार देश के सामने रखा। अगर यह पागल बाबा की बात होती तो ये ठोस विचार के लोग, व्यवहार को न भूलनेवाले लोग मिलकर देश के समक्ष एक विचार रख ही न पाते। वहाँ जो भी जुटे, वे जमीनपर चलनेवाले माने जाते हैं और मैं माना जाता हूँ हवा में उड़नेवाला। सच पूछें तो ये ही लोग हवा में उड़ते हैं और मैं तो जमीन पर ही चलता हूँ।

"सरदार" की अक्ल चाहिए

इसीलिए इन व्यावहारिक लोगों का एतबार लेकर आप लोग लोगों को समझायें कि ग्रामदान अत्यन्त व्यावहारिक है। किन्तु इसके लिए सरदार वल्लभभाई की अक्ल चाहिए। जिस तरह उन्होंने राजा-रजवाड़ों को समझाने में अक्ल लगायी और राजा-रजवाड़ों ने भी उसे समझने में जो अक्ल दिखलायी, वह भी एक अक्ल थी। जो अक्ल राजा-रजवाड़ों में थी, आज के जमींदारों में भी वह मौजूद है। लेकिन हममें ही सरदार की अक्ल नहीं, यही एक समस्या है। अगर हममें सरदार की अक्ल हो तो ग्रामदान से कुछ भी डरने की बात नहीं। ग्राम की व्यवस्था जैसी सब चाहें, हो सकती है। साम्ययोग का अर्थ यह नहीं कि काट-काटकर समता लायी जाय। इसमें विवेक को अवसर है, पर भेद को अवसर नहीं। अगर हम लोगों को ठीक-ठीक समझायें तो उन्हें भय रह ही नहीं सकता और गुजरात में गाँव का काम निर्भयता के साथ होने लगे।

जमीन के एकीकरण का आग्रह नहीं

कितने ही लोगों को ग्रामदान के प्रति अत्यन्त प्रेम है, कारण ग्रामदान में सारी जमीन का एकीकरण हो पाता है, ऐसा वे मानते हैं। कुछ लोग तो इसी कारण ग्रामदान से डरते भी हैं। प्रेम और भय—दोनों का कारण एक ही बन गया है। हम दोनों को समझाना चाहते हैं कि इसमें भय या प्रेम का कोई कारण नहीं। कारण ग्रामदान में ऐसा कोई विधान नहीं कि सारी जमीन एक ही कर दी जाय। कई ग्रामदानों में उसकी जरूरत नहीं पड़ती और कहीं वह एक करनी ही नहीं चाहिए, ऐसी भी बात नहीं है। इस विषय में ग्रामवासी स्वतंत्र है। जिसमें सभी लोगों का हित हो, वही किया जाय। इसमें किसी तरह, स्थूल आग्रह नहीं। अगर इस तरह लोगों को यह विचार समझाया जाय तो मुझे पूरी आशा है कि गुजरात में ग्रामदान का काम भलीभाँति हो सकता है।

www.vinoba.in

स्वागत-प्रवचन

सोनगढ़ (सूरत) २२-९-'५८

गुजरात में "भक्तिसेना" का संगठन हो

अभी नारायण ने मुझसे कहा कि सूरत जिले के कार्यकर्ता आये हुये हैं। इसलिए मैं हिन्दी में बोल सकता हूँ। इसका कहना सच है, हिन्दी मुझे सधती और अच्छी भी लगती है। फिर भी मैं अपने विचार गुजराती में ही रखूँगा। एक कारण मैंने अपने स्वागत के समय कह ही दिया है। किन्तु दूसरा कारण यह है कि मैं व्याख्यान को ही सब कुछ नहीं मानता। उत्तरोत्तर मैं इस विचार पर उतर रहा हूँ कि कम से कम शब्द बोलूँ और संभव हो तो निःशब्द ही बातें किया करूँ, इसलिए अगर गुजराती मुझे कम सध पायेगी तो कम ही बोलूँगा, इसमें मेरा लाभ ही है।

महाराष्ट्र का बहुत बड़ा दान

अभी-अभी मैं महाराष्ट्र की यात्रा कर आया हूँ। महाराष्ट्र ने मुझे बहुत बड़ा दान दिया, जिससे बड़े दान की मैंने अपेक्षा ही नहीं रखी थी। मुझे जब यह दान मिला तो इसी ढंग से और इन्हीं शब्दों में मैंने उसकी घोषणा की। पंढरपुर के मन्दिर में ईसाई, मुसलमान, जैन, सिख, पारसी मित्रों के साथ, जो मेरी पदयात्रा में थे और सर्वोदय-सम्मेलन में भी आये थे, मुझे पंढरपुर के पुजारियों ने बड़े ही प्रेम से मन्दिर में प्रवेश कराया। पंढरपुर में भगवान के दर्शन केवल आँखों से ही नहीं, स्पर्श से भी होते हैं। यह शास्त्रों में वर्णन किया गया है कि दर्शन और स्पर्श से जीवात्मा पवित्र होता है। इन्हीं शास्त्रवाक्यों का अनुसरण कर वहाँ प्रत्यक्ष आलिंगन देने की विधि है। इस तरह मुसलिम बहन फातमा और ईसाई बहन हेमा तथा अन्य अनेक भाई-बहन स्पर्श से भी भगवान से मिले। उस दिन मुझे बड़े से बड़ा दान मिला, ऐसा मालूम पड़ा।

पंढरपुर का जनदेवता

पंढरपुर क्षेत्र महाराष्ट्र का तो सबसे श्रेष्ठ स्थान है ही। एक दृष्टि से देखा जाय तो उसके बराबरी का एक भी स्थान मैंने सारे भारत में नहीं देखा। कारण पंढरपुर का देव जनता का देव है। याने वहाँ और किसीकी चलती नहीं, सिर्फ जनता की ही चलती है। फिर भी अब तक वहाँ अहिन्दुओं का प्रवेश नहीं हो पाया था।

शस्त्रधारण में मानव के विकास का क्रम

और भी इसकी एक खासियत है, जिसका मेरे चित्त पर काफी असर है। यही काम लेकर मैं यहाँ आया हूँ। इसलिए मैं इस परमात्मा का संक्षेप में वर्णन करता हूँ। साधारण रूप में इतिहास का यह अनुभव है कि प्राचीनकाल में राज्य-व्यवस्था न थी और लोग शस्त्र हाथ में लेकर ही निर्णय करते थे। शस्त्र से जो निर्णय होता, उसे ही धर्म का निर्णय माना जाता था। फिर जब मानव का धीरे-धीरे विकास हुआ तो मानव को लगा कि यह प्रकार ठीक नहीं। फिर भी बिना शस्त्र के दुर्जनों से रक्षा कैसे की जाय? इसलिए उन लोगों ने शासन-संस्था जैसी एक संस्था बनाकर शस्त्र उसे ही सौंप दिये। उन्होंने निर्णय कर दिया कि "नागरिकों और ग्रामीणों के हाथों में शस्त्र रहना ठीक नहीं। शस्त्र के उपयोग का अधिकार शासन-संस्था को ही रहे।" यह उन दिनों बहुत बड़ा निर्णय हुआ। यह विकासक्रम में आगे का कदम रहा। आजतक यही चला आ रहा है। धीरे-धीरे शासनसंस्था राजाओं की बनी और फिर बहुत से लोगों की बनी। इस तरह शासन-संस्था के विभिन्न प्रकार आज तक चलते आ रहे हैं।

शास्त्रों से सर्वथा विश्वास उठ जाना ही सच्ची प्रगति

आज हिन्दुस्तान और अन्य देशों में भी लोकतंत्र चल रहा है। माना जाता है कि आजतक की सबसे सुधरी शासन-पद्धति लोकतंत्र है, फिर भी उसका आधार दण्डशक्ति ही है। दण्डशक्ति सत्ता को सौंपना और उसीसे लोगों को बचाना, यही इसमें चलता है। लेकिन जब समाज और आगे बढ़ेगा तो वह इस निर्णय पर पहुँचेगा कि शस्त्रशक्ति का अधिकार शासनसंस्था को भी रहे। जब ऐसी स्थिति होगी, तभी "गांधीयुग" शुरू होगा। उस समय अपनी रक्षा का कोई दूसरा साधन खोज निकालेगा। आज उसकी तैयारी चल रही है, पर अभी वह स्पष्ट नहीं हो पाया है। उस समय व्यक्ति का शस्त्रों पर से सर्वथा विश्वास उठ जायगा। उस समय शस्त्र भगवान के हाथ में रहेंगे। गदाचक्रधारी भगवान ही उस समय लोगों के पूज्य होंगे। आज भी वे पूज्य हैं, पर उस समय वे परम पूज्य माने जायँगे। उस समय समाज में यही श्रद्धा काम करेगी कि दण्डशक्ति ईश्वर के अधीन है और वही सबको न्याय देगा। तभी धर्मशास्त्रों की इच्छा पूर्ण होगी।

मध्यमार्ग : दण्डशक्ति परमात्माधीन

इससे भी आगे जब समाज का विकास होगा, तब वह दण्डशक्ति परमात्मा के हाथ में भी नहीं रहेगी। "परमात्मा करुणावान है, क्षमावान है। क्षमा और करुणा से जो रक्षण हो सकता है, वह दण्ड से नहीं हो सकता"—मानव जब यह निर्णय करेगा, तभी मानव जाति का निःसन्देह विकास होगा।

विठोबा निःशस्त्र परमात्मा

मानव यह निःशस्त्र परमात्मा कैसा होगा, यह देखना हो तो पंढरपुर के विठोबा का दर्शन कीजिये। तब पता चलेगा कि इस परम विकसित युग का परमात्मा ऐसा हुआ करता है। यह शस्त्रधारी नहीं है। कमर पर हाथ रखकर लोगों को बतलाता है कि "सज्जनो, डरो मत। यह भवनदी भयानक मालूम पड़ती है। पर यह गहरी नहीं है। उसमें सिर्फ कमरभर पानी है। इसमें डरने की कोई बात नहीं।" ऐसा विश्वास इस युग का परमात्मा देगा। यह और किसी तरह का संरक्षण नहीं देगा। यह मानव को केवल संकेत देगा। मूर्ति रहेगी और यह केवल संकेत देगी, आश्रय देगी और सभी लोग निर्भय होकर बर्ताव करेंगे।

इस युग का विट्ठल-मन्दिर आज पंढरपुर में खड़ा है। जब मानव का इतने दूर तक विकास होगा, तभी उसे पंढरपुर के विठोबा का दर्शन हो सकेगा। तबतक तो भगवान विविध शस्त्रधारी ही रहेंगे। कोई शेर पर सवारी करेगा तो किसीके हाथ में खड्ग रहेगा। उन्हें अनेक हाथ होंगे और उनमें तरह-तरह के शस्त्र रहेंगे। अणुशस्त्र भी उनके हाथों में दिये जायँगे। यही सब होगा। लेकिन जब शस्त्रों का अस्त होगा, तभी परिपूर्ण मानवता का उदय होगा और पंढरपुर के विठोबा सारे मानव-समाज के सामने रहेंगे।

आन्तरिक क्षेत्र में अहिंसा से ही रक्षण

यहाँ मैं पंढरपुर का स्मरण इसलिए कर रहा हूँ कि कम से कम भारत के आन्तरिक कार्यों में, आन्तरिक क्षेत्रों में हम अहिंसात्मक

रक्षण खड़ा कर सकें। दुनिया में अन्य राष्ट्रों के बारे में तरह-तरह की आशंकाएँ की जाती हैं। जबतक ये सारे सन्देह मिटते नहीं, तबतक दुनिया को शान्ति मिल ही नहीं सकती। किन्तु जबतक यह नहीं हो पाता, तबतक कम से कम एक देश में ऐसी शान्ति खड़ी की ही जा सकती है, जिससे अपने देश के अन्दर सेना, पुलिस आदि के रक्षण की जरूरत ही न रहे।

गुजरात से विशेष आशा

मैं यही तीव्र वासना लेकर गुजरात में आया हूँ। गुजरात मेरी यह वासना पूर्ण न करेगा तो और कौन करेगा? संभव है कि जो देश, जो समाज और जो राष्ट्र हिंसा की बड़ी बहादुरी दिखा चुका हो, कदाचित् मेरी यह बात उठा ले। लेकिन भारत के लिए और विशेष कर गुजरात के लिए इस बात की आशा इसलिए की जा सकती है कि उसने शाकाहार का प्रयोग किया है। इसलिए मैं समझता हूँ कि गुजरात आज यह बात चाह रहा है और इसीलिए मैं ऐसी आशा रखता हूँ। आप लोग भूदान, ग्रामदान आदि जो करना है, वह तो आगे करेंगे ही। लेकिन शान्ति-सेना की स्थापना करेंगे तो सहज ही सेवा-सेना की स्थापना हो जायगी। उसमें निष्पक्ष, निर्वैर और निर्भय सेवक होंगे, जो निरन्तर सेवा का काम करते रहेंगे। वे ही समय आने पर अशान्ति के अवसर पर शान्ति-सैनिकों का भी काम करेंगे। अगर ऐसी एक सेना खड़ी हो जाय तो आगे के और सभी किये जानेवाले काम आसानी से होंगे। इसलिए मुझे इस समय बुनियादी काम शान्तिसेना का संगठन ही मालूम पड़ रहा है।

भक्तिसेना में शान्तिसेना और सेवासेना

यह शान्तिसेना भक्तिसेना है—"रे शिर साटे नटवर ने वरिये।" भक्ति का एक अंग सिर है तो दूसरा अंग चरण-सेवा। "नित्य निरन्तर नित सेवा नित्य कीर्तन"—नित्य सेवा का स्वरूप चरणसेवा का होगा और नैमित्तिक सेवा का स्वरूप "शिर साटे" होगा। भक्ति-सेवा में "शान्ति-सेना" और "सेवा-सेना" दोनों विचार अन्तर्भूत हो जाते हैं। गुजरात में ऐसी भक्ति-सेना होनी चाहिए और इसका आरंभ इस सूरत से ही हो।

नित्य नयी स्फूर्ति का विषय

बारडोली की लड़ाई सत्याग्रह की अनेकविध पद्धतियों में से एक विशेष प्रकार की पद्धति रही, ऐसा मैं मानता हूँ। किन्तु आज वह पुरानी चीज हो गयी है। आज जमाना उससे कहीं आगे बढ़ गया है। फिर भी जिस जमाने में यह लड़ाई हुई, वह अपूर्व लड़ाई रही। उस समय सूरतवालों ने शूरों की निर्भयता दिखलायी, इसलिए मैं चाहता हूँ कि शान्तिसेना की स्थापना का आरंभ भी सूरत जिले से ही होना चाहिए। यों तो मैं रोज विशेषकर इस विचार का धीरे-धीरे विकास करता रहूँगा। वैसे तो मैंने इस विषय पर बहुत कुछ कहा है, फिर भी मुझे रोज नयी-नयी बात सूझा करती है। यह विषय ही ऐसा है कि नित्य नयी स्फूर्ति प्रदान करेगा। उन सबको मैं आप लोगों के समक्ष उपस्थित करता रहूँगा।

पंढरपुर का सर्वत्र अनुकरण हो

आज तो केवल मैं गुजरात से क्या चाहता हूँ, यह संक्षेप में मैंने आप लोगों के समक्ष उपस्थित कर दिया। मैंने पंढरपुर की जो बात बतायी, उसीसे आपको यह ध्यान में आ गया होगा। अब इसे अलग बताने की जरूरत नहीं। जब पंढरपुर में सब धर्मियों को प्रवेश प्राप्त हो गया, तब हिन्दुस्तान में एक भी मन्दिर ऐसा न रहे, जहाँ सब धर्मियों को प्रवेश न मिले। और इसे मैं शान्तिसेना के कार्य का पोषक मानता हूँ। भूदान, ग्रामदान, नयी तालीम आदि सारे काम शांतिसेना के पीछे-पीछे आ ही जायँगे। मैं आपका अधिक समय लेना नहीं चाहता। यह पहला ही अवसर था और मेरे मन में जो मुख्य बात थी, उसे संक्षेप में मैंने आपके समक्ष रख दिया। ●●●

गुजरात की सीमापर

सोनगढ़ (सूरत) २२-९-'५८

मैं गुजरात की सेवा ही करने आया हूँ

वर्षों से चाह थी (आँसू)। आज यह अवसर आया है। गान्धीजनों के (आँसू) दर्शन से जो आनन्द हो रहा है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। गुजरात में गांधीजनों के सिवा और कौन रहते हैं, इसे मैं नहीं जानता। यों तो सारी दुनिया गांधीजी की थी और वे भी सारी दुनिया के थे। फिर वे भारत के तो थे ही, लेकिन उसके बाद गुजरात के भी थे। आपका यह भाई वर्षों से इस प्रान्त से दूर बाहर रहा, अब अपने घर में पहुँच गया है।

हम सब लम्बे यात्री

यों तो हम लोगों का घर बहुत दूर है, फिर भी बहुत नजदीक भी है। हम सभी यात्री हैं। मैं तो प्रत्यक्ष यात्री हूँ, यह तो आप देख ही रहे हैं। लेकिन जो लोग बाह्य दृष्टि से घूमते नहीं हैं, वे भी यात्री ही हैं। हम सबकी एक लम्बी यात्रा चल रही है।

मेरे लिए गुजरात की देन

गुजरात ने मुझे जो प्रेम, जो करुणा और जो रक्षण दिया है, उसे मैं भूल नहीं सकता। मेरे पास एक वस्तु थी और वह थी सत्यनिष्ठा। मेरे सभी मित्र जानते हैं कि जिसे "सभ्यता" और "शिष्टता" कहा जाता है, वह मुझमें बहुत ही कम है। लेकिन मुझे इसकी परवाह नहीं थी और न आज ही है, यद्यपि मैं उनकी कीमत जानता हूँ। सारांश, एकमात्र सत्यनिष्ठा का गुण लेकर मैं बापू के पास पहुँचा था। मुझमें प्रेम भी बहुत कम है और करुणा तो उससे भी कम है। लेकिन मुझे इन दोनों गुणों की काफी दरकार रही और आज भी है।

सत्यनिष्ठा के सिवा एक और भी चीज मुझे बापू से प्राप्त हुई। मैं यह नहीं जानता कि उन्होंने मेरी परीक्षा ली या नहीं, लेकिन अपनी बुद्धि से मैंने योग की काफी परीक्षा कर ली थी और यदि उस परीक्षा में वे कमजोर सिद्ध होते तो मैं कभी उनके पास टिक न पाता। मेरी परीक्षा कर उन्होंने मुझमें चाहे जितनी खामियाँ देखी होंगी या देख पाते तो भी वे मुझे अपने पास रखते। किन्तु अगर मुझे उनकी सत्यनिष्ठा में कुछ भी कमी, न्यूनता या खामी दीख पड़ती तो मैं उनके पास टिक न पाता।

बापू के चरणों में हृदय और जीवन स्थिर

भगवान की अपार दया थी कि उसने मुझे इनके चरणों में स्थिर किया। अवश्य ही मुझे इस बात की आदत नहीं है कि हर

www.vinoba.in

घड़ी और हर बात में मैं गांधीजी का नाम लिया करूँ। फिर भी अपने हृदय और जीवन में मैं देखता हूँ कि दोनों उनके चरणों में अत्यन्त स्थिर हैं। जो विचार और जो शिक्षा मुझे उन्होंने दी, मैं नहीं जानता कि उसपर मैं कितना अमल कर पाता हूँ। वे भी नहीं जानते और कदाचित् आप भी नहीं जान सकते, भगवान अवश्य जानता है। उनके विचारों में से मैं जितना समझ पाया हूँ और जितना मुझे अच्छा लगा, उसपर अमल करने के लिए प्रतिक्षण सावधान रहकर, मेरी कोशिश चल रही है—यह कहने में मुझे किसी भी तरह की हिचक नहीं। बल्कि उनके जीते जी जितना सावधान रहा, ईश्वर की कृपा से मैं अत्यन्त सावधान रहा, उससे भी आज निःसन्देह अधिक सावधान हूँ। साथ ही यह भी अनुभव करता हूँ कि वे मेरे आगे हैं, पीछे हैं और मेरे सिर पर भी हैं।

गुजरात में ही प्रवचन क्यों ?

मेरे प्रिय मित्रो ! इस समय मैं अधिक बोलूँगा, इसकी आप अपेक्षा न करें। मैं अधिक बोल भी नहीं सकता। गुजराती बोलने का मेरा अभ्यास भी छूट गया है। फिर भी यहाँ मुझे अभी गुजराती के सिवा और कोई भाषा सूझी ही नहीं। कारण जब मैं बापू से मिला तो उनके साथ मुझे हिन्दी में बातचीत करनी पड़ी थी। मैंने देखा कि उस समय उन्हें हिन्दी बहुत अच्छी नहीं आती थी। इसलिए मैंने बहुत ही कम दिनों में गुजराती का अभ्यास कर लिया और तबसे उनके साथ मेरी बातचीत गुजराती में ही हुआ करती थी। आज मैं आप लोगों के सामने बैठा हूँ। इसलिए जैसा बोल पाऊँ, गुजराती में ही बोलने की मुझे स्फूर्ति हुई और ये दो शब्द मैंने आप लोगों के समक्ष उपस्थित किये।

बापू का ही काम कीजिये

एक और बात मुझे कहने के लिए रह जाती है। मुझे यहाँ रोज कुछ-न-कुछ बोलना पड़ेगा। लेकिन मुझे यहाँसे काफी मिला है और आप सब भाइयों को भी मिला है। लेकिन जो मिला है, उससे अधिक ज्ञान उड़ेलने के लिए मैं यहाँ नहीं आया हूँ। आपको जितनी सेवा हो सकती है, उतनी करने की कोशिश करूँगा। मैं आशा रखता हूँ कि जो विचार लेकर मैं घूम रहा हूँ और जिस काम के लिए घूम रहा हूँ, जो विचार लेकर यहाँ आया हूँ, अगर वह आपको गांधीजी का ही काम मालूम पड़े तो उसपर अमल कीजिये और जितने अंशों में वैसा न मालूम पड़े, उतने अंशों में मेरा विचार आप अस्वीकार कर दें, भले ही मुझे वे विचार सच मालूम पड़ते हों। सबको प्रमाण ! ● ● ●

बारडोली के स्वराज्य-आश्रम में जाते हुए

बारडोली (सूरत) २७-९-'५८

गुजरात की प्राणशक्ति प्रकट हो

आपके दर्शन से मुझे जो आनन्द हो रहा है, वही मैं व्यक्त करता हूँ। यह प्रसंग व्याख्यान का नहीं है। जो काम लेकर मैं यहाँ आया हूँ और जो काम लेकर गुजरात में मेरे चार महीने बीतेंगे, वह आप सबको मालूम है। गुजरात से में बहुत आशा रखकर आया हूँ। ऐसी आशा रखने का मुझे हक है और उसे गुजरात कबूल करता है। ऐसी स्थिति में मुझे बहुत कुछ कहना नहीं है, आपको जो करने लायक है, उसे आप कीजिये।

शान्ति की शक्ति का प्राकट्य आवश्यक

मुख्य वस्तु यह है कि अपने देश में शान्ति की शक्ति प्रकट हो जाना बहुत जरूरी है, क्योंकि जहाँ-तहाँ अशान्ति की शक्तियाँ अपना रूप दिखा रही हैं। ऐसी स्थिति में शान्ति की शक्ति खामोश रहे, अपना स्वरूप प्रकट न करे, अशान्ति का सामना करने के लिए आगे न आये तो हिन्दुस्तान में अहिंसा का नाममात्र रह जायगा और उसकी दशा दूसरे देशों से बदतर हो जायगी। वे देश हिंसा में विश्वास मानते हैं, उनके पास हिंसा का बल भी है। लेकिन अगर हम भी हिंसा में विश्वास मानें तो हमारे पास हिंसा का बल नहीं। उनकी तुलना में हमारे पास कुछ भी हिंसा का बल होने से हम केवल मानसिक हिंसा करते जायँगे, उससे बहुत बुरे परिणाम पैदा हो सकते हैं। इसलिए शान्ति की ताकत प्रकट होनी चाहिए।

यह अद्यतनीय ही नहीं, तात्कालिक आवश्यकता

यह मैं इस जमाने की नहीं, आज की ही बात कहता हूँ। याने इसकी अत्यन्त तीव्र आवश्यकता है। गुजरात इस चीज को पहचाने और सैकड़ों नर-नारी शान्ति-सेना में सैनिक के नाते आगे आयें, यह आशा मैं उससे रखता हूँ। ऐसा बल गुजरात के हृदय में है, पर वह अंदर छिपा है, उसे बाहर निकालने के लिए यही एक चीज मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहाँ कहता हूँ और कहूँगा। गुजरात-प्रवेश के बाद तीन-चार दिन में पंद्रह-बीस नाम शान्तिसेना में आ गये हैं। मैं चाहता हूँ कि गुजरात की सद्भावना, गुजरात की प्राण-शक्ति इस वक्त जागृत हो जाय। जो तालीम महात्मा गांधीजी ने हमें दी है, हमारे खून में जो पुरातन संस्कार हैं, वैष्णव संप्रदाय का हमारा जो भक्तिपंथ है और उसके परिणामस्वरूप जो शक्ति हृदय में है, वह सब इस समय प्रकट होकर, मौके पर काम देगी, ऐसी मैं आशा रखता हूँ। ●

www.vinoba.in

किसानों के प्रतिनिधियों के बीच बारडोली (सूरत) २७-९-'५८

ग्रामदान में भय की तनिक भी गुंजाइश नहीं

मैं गुजरात में काफी साल बाद आया हूँ तो भी मेरा दावा है कि मैं गुजरात को अच्छी तरह जानता हूँ। गुजरात का हृदय वैष्णव है और बुद्धि व्यावहारिक। वैष्णव धर्म और व्यावहारिक बुद्धि—दोनों का जहाँ योग होता है, वहाँ गीता के कथनानुसार योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धारी अर्जुन (पार्थ) दोनों एकत्र हो जाते हैं। इसलिए वहाँ श्री, विजय, धृति और मूर्ति, जो कुछ हो, सारा मिलकर ही रहता है। ऐसी दुहरी शक्ति सभी कौमों में नहीं होती। अगर दृष्टान्त ही देना हो तो मैं बहुत आदरपूर्वक और किसी प्रकार का आरोप लगाये बिना कह सकता हूँ कि बंगाल में वैष्णव धर्म और वैष्णव-भक्ति शायद गुजरात की अपेक्षा ज्यादा हो, किन्तु व्यवहार-बुद्धि का योग वहाँ अधिक देखने को नहीं मिलता।

विज्ञानयुग में सभी जातियों का विकास निश्चित

कुछ स्थानों में व्यवहार-बुद्धि बहुत तीव्र दीखती है तो वैष्णव-भक्ति में कुछ कमी मालूम पड़ती है। कहीं पर वैष्णव-धर्म ज्यादा दीखता है तो व्यवहार धर्म नहीं दीखता है। इस तरह अलग-अलग कौमों का विकास अलग-अलग ढंग से हुआ है, इसलिए फरक रहता है। किन्तु इस विज्ञानयुग में विज्ञान की शक्ति आत्मज्ञान की मदद में आ गयी है। जैसे आत्मज्ञान "मैं" और "मेरा" के विरुद्ध बोलता है, वैसे ही विज्ञान भी उसके विरुद्ध बोलता है। इस तरह आज दोनों मिल गये हैं और दोनों का बल काम कर रहा है। इसलिए विभिन्न जातियों के विकास में यह जो विषमता पायी जाती है, वह अधिक समय तक टिकेगी, ऐसा मैं नहीं मानता। अतएव आशा की जा सकती है कि सभी पिछड़ी कौमें, फिर चाहे वे वृत्ति-भावना या विचार में पिछड़ी हों, शीघ्र ही एक जैसी हो जायँगी। अभी तो इनके विकास में फरक ही दीखता है।

गुजरात में धर्म और व्यवहारबुद्धि दोनों साथ-साथ

सारांश, दीखता है गुजरात में ये दोनों शक्तियाँ एकत्र हो गयी हैं। यह नहीं कि एक ही मनुष्य के हृदय में वैष्णव-भक्ति और दूसरे को व्यवहार-बुद्धि है। बल्कि एक ही मनुष्य के हृदय में वैष्णव-धर्म, जैन-धर्म या दूसरा कोई भी धर्म और व्यवहार-बुद्धि भी रहती है। इस तरह यह दुहरा दर्शन एक ही व्यक्ति में यहाँ देखने को मिलता है। "यत्र योगेश्वरः कृष्णः, यत्र पार्थो धनुर्धरः" की तरह यहाँ योगेश्वर और पार्थ अलग-अलग नहीं रहते। एक ही व्यक्ति में एक साथ दोनों गुण कहीं दीखते हों तो वे गुजरात में ही। इसलिए यहाँ गांधीजी और सरदार—ये दो अलग-अलग व्यक्ति होने चाहिए, ऐसा कोई आग्रह नहीं। गुजरात में ये दोनों एक साथ ही हो सकते हैं। ऐसा जो दावा गांधीजी करते थे, वह केवल आदर्शवाद नहीं, व्यावहारिक आदर्शवाद है। मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान में शायद ही कोई ऐसा संत पुरुष हो गया हो, जो इस तरह दुहरा दावा कर सके और लोगों को उसे मानना पड़े।

यहाँ विच्छिन्न व्यक्तित्व संभव ही नहीं

कुछ लोगों का खयाल है कि गांधीजी में व्यवहार-शक्ति की न्यूनता थी। किन्तु यह ठीक नहीं है। उनमें सरदार से रत्तीभर भी कम व्यवहार-शक्ति थी, ऐसा सरदार ही नहीं मानते थे। राजनैतिक विषयों और चर्चाओं में बहुत बार ऐसा अनुभव आता था कि वे ज्यादा व्यावहारिक थे। भिन्न-भिन्न विचार माननेवाले आखिर में समझ गये। उन्हें यह कहने का अवसर आया कि "बापू का कहना मान लेने पर सब बच जाते हैं और सब का ज्यादा अच्छा होता है।" मैं बापू के बचाव के लिए यह सारा नहीं कहता। उनका बचाव करने में वे खुद समर्थ हैं और उसे वे कर ही रहे हैं। मैं कहना यह चाहता था कि गुजरात में विच्छिन्न व्यक्तित्व नहीं है। अवश्य ही कुछ व्यक्ति ऐसे होंगे, जिनमें व्यवहार-बुद्धि कम और धर्म-विचार ज्यादा हो और कुछ ऐसे भी होंगे, जिनमें व्यवहार-बुद्धि ज्यादा और धर्म-विचार कम हो। फिर भी साधारणतः गुजरात की ओर देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि यहाँके समाज में विच्छिन्न व्यक्तित्व कम है। मैं यह जो गुजरात का गौरव करता हूँ, वह सत्य पर आधारित है। मैं मिथ्या गौरव नहीं करता। इसीलिए आशा रखकर गुजरात आया हूँ।

किसान-संघ का पत्रक

आज यहाँके किसान-संघ की और से मेरा निर्देश कर जो एक पत्रक अखबार में छपाया गया है, उसे मैं पढ़ गया। मुझे वह बहुत अच्छा लगा। उन लोगों ने अपने विचार बड़े प्रेम से और ठीक तरह रखे हैं। उनके साथ चर्चा करने के लिए मैं भी हृदय से तैयार हूँ।

[चालू]

अनुक्रम

१. स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल क्रिया से ही तहरीक को बल मिलेगा
पट्टी १५ नवंबर '५९ पृष्ठ ८०३
२. भूमि-सा अधिष्ठान सामुदायिक होना चाहिए
सोनगढ़ २२ नवंबर '५८ ,, ८०४
३. गुजरात में "भक्ति सेना" का संगठन हो
सोनगढ़ २२ नवंबर '५८ ,, ८०७
४. मैं गुजरात की सेवा ही करने आया हूँ
सोनगढ़ २२ नवंबर '५८ ,, ८०८
५. ग्रामदान में भय की तनिक भी गुंजाइश नहीं
बारडोली २७ नवंबर '५८ ,, ८०९

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।
www.vinoba.in